प्रश्नव्याकरणसूत्र की प्राचीन विषयवस्तु की खोज

श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही परम्पराएं यह स्वीकार करती हैं कि प्रश्नव्याकरणसूत्र (पण्हवागरण) जैन अंग-आगम साहित्य का दसवां अंग-ग्रन्थ है, किन्तु दिगम्बर परम्परा के अनुसार अंग-आगम साहित्य का विच्छेद (लुप्त) हो जाने के कारण वर्तमान में यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। श्वेताम्बर परम्परा अंग साहित्य का विच्छेद नहीं मानती है। अत: उसके उपलब्ध आगमों में प्रश्नव्याकरण नामक ग्रन्थ आज भी पाया जाता है। किन्तु समस्या यह है कि क्या श्वेताम्बर परम्परा के वर्तमान प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु वही है जिसका निर्देश अन्य श्वेताम्बर प्राचीन आगम ग्रन्थों में है अथवा यह परिवर्तित हो चुकी है। प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु सम्बन्धी प्राचीन निर्देश श्वेताम्बर परम्परा के स्थानांग (ठाणंग), समवायांग, अनुयोगद्वार एवं नन्दीसूत्र में और दिगम्बर परम्परा के राजवार्तिक, धवला एवं जयधवला नामक टीका ग्रन्थों में उपलब्ध है। इनमें स्थानांग और समवायांग लगभग ३री-४थी शती एवं नन्दी लगभग ५वीं-६ठी शताब्दी, राजवार्तिक ८वीं शताब्दी तथा धवला एवं जयधवला १०वीं शताब्दी के ग्रन्थ स्वीकार किये गये हैं।

प्रश्नव्याकरण नाम क्यों?

'प्रश्नव्याकरण' इस नाम को लेकर प्राचीन टीकाकारों एवं विद्वानों में यह धारणा बन गयी थी कि जिस ग्रन्थ में प्रश्नों के समाधान किये गये हों, वह प्रश्नव्याकरण है। मेरी दृष्टि में प्रश्नव्याकरण के प्राचीन संस्करण की विषयवस्तु प्रश्नोत्तरशैली में नहीं थी और न वह प्रश्न-विद्या अर्थात् निमित्तशास्त्र से ही सम्बन्धित थी। गुरु-शिष्य सम्वाद की प्रश्नोत्तर शैली में आगम-ग्रन्थ की रचना एक परवर्ती घटना है- भगवती या व्याख्या-प्रज्ञप्ति इसका प्रथम उदाहरण है। यद्यपि समवायांग एवं नन्दीसूत्र में यह माना गया है कि प्रश्नव्याकरण में १०८ पूछे गये, १०८ नहीं पूछे गये और १०८ अंशत: पूछे गये और अंशत: नहीं पूछे गये प्रश्नों के उत्तर हैं।[1] किन्तु यह अवधारणा काल्पनिक ही लगती है। प्रश्नव्याकरण की प्राचीनतम विषयवस्तु प्रश्नोत्तर रूप में थी या उसमें प्रश्नों का उत्तर देने वाली विद्याओं का समावेश था- समवायांग और नन्दीसूत्र के उल्लेखों के अतिरिक्त आज इसका कोई प्रबल प्रमाण उपलब्ध नहीं है। प्राचीनकाल में ग्रन्थों को प्रश्नों के रूप में विभाजित करने की परम्परा थी। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण उदाहरण आपस्तम्बीय धर्मसूत्र है। जिसकी विषयवस्तु को दो प्रश्नों में विभक्त किया है। इसके प्रथम प्रश्न में ११ पटल और द्वितीय प्रश्न में ११ पटल हैं। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ प्रश्नोत्तर रूप में भी नहीं है। इसी प्रकार बौधायन धर्मसूत्र की विषयवस्तु भी प्रश्नों में विभक्त है। अत: प्रश्नोत्तर शैली में होने के कारण या प्रश्नविद्या से सम्बन्धित होने के कारण इसे प्रश्नव्याकरण नाम दिया गया था, यह मानना उचित नहीं होगा। वैसे इसका प्राचीन नाम 'वागरण' (व्याकरण) ही था। ऋषिभाषित में इसका इसी नाम से उल्लेख है।[2] प्राचीनकाल में तात्त्विक व्याख्या को व्याकरण कहा जाता था।

प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु

प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु के सम्बन्ध में अन्य ग्रन्थों में जो निर्देश है- उससे वर्तमान प्रश्नव्याकरण निश्चय ही भिन्न है। यह परिवर्तन किस रूप में हुआ है, यही विचारणीय है। यदि हम ग्रन्थ के कालक्रम को ध्यान में रखते हुए प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु के सम्बन्ध में उपलब्ध विवरणों को देखें, तो हमें उसकी विषयवस्तु में हुए परिवर्तनों की स्पष्ट सूचना उसमें मिल जाती है।

(अ) स्थानांग– प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु के सम्बन्ध में प्राचीनतम उल्लेख स्थानांगसूत्र में मिलता है। इसमें प्रश्नव्याकरण की गणना दस दशाओं में की गई है तथा उसके निम्न दस अध्ययन बताये गये हैं[3]—

१. उपमा, २. संख्या, ३. ऋषिभाषित, ४. आचार्यभाषित, ५. महावीरभाषित, ६. क्षोभिकप्रश्न, ७. कोमलप्रश्न, ८. आदर्शप्रश्न (आद्रकप्रश्न), ९. अंगुष्ठप्रश्न, १०. बाहुप्रश्न । इससे फलित होता है कि सर्वप्रथम यह दस अध्यायों का ग्रन्थ था। दस अध्यायों के ग्रन्थ दसा (दशा) कहे जाते थे।

(ब) समवायांग– स्थानांग के पश्चात् प्रश्नव्याकरणसूत्र की विषयवस्तु का अधिक विस्तृत विवेचन करने वाला आगम समवायांग है। समवायांग में उसकी विषयवस्तु का निर्देश करते हुए कहा गया है कि प्रश्नव्याकरण सूत्र में १०८ प्रश्नों, १०८ अप्रश्नों और १०८ प्रश्नाप्रश्नों की विद्याओं के अतिशयों (चमत्कारों) का तथा नागों-सुपर्णों के साथ दिव्य संवादों का विवेचन है। यह प्रश्नव्याकरण दशा स्वसमय-परसमय के प्रज्ञापक एवं विविध अर्थों वाली भाषा के प्रवक्ता प्रत्येक बुद्धों के द्वारा भाषित अतिशय गुणों एवं उपशमभाव के धारक तथा ज्ञान के आकर आचार्यों के द्वारा विस्तार से भाषित और जगत के हित के लिए वीर महर्षि के द्वारा विशेष विस्तार से भाषित है। यह **आदर्श (अद्दाग),** अंगुष्ठ, बाहु, असि, मणि, क्षौम (वस्त्र) एवं आदित्य (के आश्रय से) भाषित है। इसमें महाप्रश्न विद्या, मनप्रश्नविद्या, देवप्रयोग आदि का उल्लेख है। इसमें सब प्राणियों के प्रधान गुणों के प्रकाशक, दुर्गुणों को अल्प करने वाले, मनुष्यों की मति को विस्मित करने वाले, अतिशयमय कालज्ञ एवं शमदम से युक्त उत्तम तीर्थंकरों के प्रवचन में स्थित करने वाले, दुरभिगम, दुरवगाह, सभी सर्वज्ञों के द्वारा सम्मत सभी अज्ञजनों को बोध कराने वाले प्रत्यक्ष प्रतीतिकारक, विविधगुणों से और महान् अर्थों से युक्त जिनवर प्रणीत प्रश्न (वचन) कहे गये हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नव्याकरण अंग की सीमित वाचनायें हैं, संख्यात अनुयोग द्वार हैं, संख्यात प्रतिपत्तियाँ हैं, संख्यात वेढ हैं, संख्यात श्लोक हैं, संख्यात निर्युक्तियाँ हैं और संख्यात सग्रहणियाँ हैं।

प्रश्नव्याकरण अंगरूप से दसवाँ अंग है, इसमें एक श्रुतस्कन्ध है, पैंतालीस उद्देशन काल हैं, पैंतालीस समुद्देशन काल हैं, पद-गणना की अपेक्षा संख्यात लाख पद कहे गये हैं। इसमें संख्यात अक्षर हैं, अनन्त गम हैं, अनन्त पर्याय हैं, परीत त्रस हैं, अनन्त स्थावर हैं, इसमें शाश्वत कृत, निबद्ध, निकाचित जिन-प्रज्ञप्त भाव कहे जाते हैं, प्रज्ञापित किये जाते हैं, प्ररूपित किये जाते हैं, निदर्शित किये जाते हैं और उपदर्शित किये जाते हैं। इस अंग के द्वारा आत्मा ज्ञाता होता है, विज्ञाता होता है। इस प्रकार चरण और करण की प्ररूपणा के द्वारा वस्तु-स्वरूप का कथन, प्रज्ञापन, निदर्शन और उपदर्शन किया जाता हैं।[४]

(स) नन्दीसूत्र– नन्दीसूत्र में प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु का जो उल्लेख है वह समवायांग के विवरण का मात्र संक्षिप्त रूप है। उसके भाव और भाषा दोनों ही समान हैं। मात्र विशेषता यह है कि इसमें प्रश्नव्याकरण के ४५ अध्ययन बताये गये हैं, जबकि समवायांग में केवल ४५ समुद्देशन कालों का उल्लेख है, ४५ अध्ययन का उल्लेख समवायांग में नहीं है।[५]

(द) तत्त्वार्थवार्तिक– तत्त्वार्थवार्तिक में प्रश्नव्याकरण की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि आक्षेप और विक्षेप के द्वारा हेतु और नय के आश्रय से प्रश्नों के व्याकरण को प्रश्नव्याकरण कहते है। इसमें लौकिक और वैदिक अर्थों का निर्णय किया जाता है।[६]

(इ) धवला– धवला में प्रश्नव्याकरण की जो विषयवस्तु बताई गई है वह तत्त्वार्थवार्तिक में प्रतिपादित विषय-वस्तु से किंचित् विभिन्नता रखती है। उसमें कहा गया है कि प्रश्नव्याकरण में आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेदनी और निर्वेदनी-इन चार प्रकार की कथाओं का वर्णन है। उसमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि आक्षेपणी कथा परसमयों (अन्य मतों) का निराकरण कर ६ द्रव्यों और नव तत्त्वों का प्रतिपादन करती है। विक्षेपणी कथा परसमय के द्वारा स्वसमय पर लगाये गये आक्षेपों का निराकरण कर स्वसमय की स्थापना करती है। संवेदनी कथा पुण्यफल की कथा है। इसमें तीर्थङ्कर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती आदि की ऋद्धि का विवरण है। निर्वेदनी कथा पाप फल की कथा है, इसमें नरक, तिर्यंच, जरा-मरण, रोग आदि सांसारिक दुःखों का वर्णन किया जाता है। उसमें यह भी कहा गया है कि प्रश्नव्याकरण प्रश्नों के अनुसार हत, नष्ट, मुष्टि, चिन्ता, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख, जीवित, मरण, जय, पराजय, नाम, द्रव्य, आयु और संख्या निरूपण करता है।[७]

इस प्रकार प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु के सम्बन्ध में प्राचीन उल्लेखों में एकरूपता नहीं है।

प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु सम्बन्धी विवरणों की समीक्षा

मेरी दृष्टि में प्रश्नव्याकरणसूत्र की विषयवस्तु के तीन संस्कार हुए होंगे। प्रथम एवं प्राचीनतम संस्कार, जो 'वागरण' कहा जाता था, में ऋषिभाषित, आचार्यभाषित और महावीरभाषित ही इसकी प्रमुख विषयवस्तु रही होगी। ऋषिभाषित में 'वागरण' ग्रन्थ का एवं उसकी विषयवस्तु की ऋषिभासित से समानता का उल्लेख है।[८] इससे प्राचीनकाल (ई०पू० ४थी या ३री शताब्दी) में उसके अस्तित्व की सूचना तो मिलती ही है साथ ही प्रश्नव्याकरण और ऋषिभाषित का सम्बन्ध भी स्पष्ट होता है।

स्थानांगसूत्र में प्रश्नव्याकरण का वर्गीकरण दस दशाओं में किया है। सम्भवतः जब प्रश्नव्याकरण के इस प्राचीन संस्करण की रचना हुई होगी तब ग्यारह अंगों अथवा द्वादश गणिपिटिक की अवधारणा भी स्पष्ट रूप से नहीं बन पायी थी। अंग-आगम साहित्य के ५ ग्रन्थ उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, प्रश्नव्याकरणदशा, अनुत्तरौपपातिक दशा तथा कर्मविपाकदशा (विपाकदशा) दस दशाओं में ही परिगणित किये जाते थे। आज इन दशाओं में उपर्युक्त पाँच तथा आचारदशा, जो आज दशाश्रुतस्कन्ध के नाम से जानी जाती है, को छोड़कर शेष चार— बन्धदशा, द्विगृद्धिदशा, दीर्घदशा और संक्षेपदशा—अनुपलब्ध हैं। उपलब्ध छह दशाओं में भी उपासकदशा और आयारदशा की विषयवस्तु स्थानांग में उपलब्ध विवरण के अनुरूप है। कर्मविपाक और अनुत्तरौपपातिकदशा की विषयवस्तु में कुछ समानता है और कुछ भिन्नता है। जबकि प्रश्नव्याकरणदशा और अन्तकृद्दशा की विषयवस्तु पूरी तरह बदल गई है। स्थानांग में प्रश्नव्याकरण की जो विषयवस्तु सूचित की गई है वही इसका प्राचीनतम संस्करण लगता है, क्योंकि यहाँ तक इसकी विषयवस्तु में नैमित्तिक विद्याओं का अधिक प्रवेश नहीं देखा जाता है। स्थानांग प्रश्नव्याकरण के जिन दश अध्ययनों का निर्देश करता है, उनमें भी मेरी दृष्टि में इसिभासियाइं, आयरियभासियाइं और महावीरभासियाइं—ये तीन प्राचीन प्रतीत होते हैं। 'उवमा' और 'संखा' की सामग्री क्या थी? कहा नहीं जा सकता। यद्यपि मेरी दृष्टि में 'उवमा' में कुछ रूपकों के द्वारा धर्म-बोध कराया गया होगा। जैसा कि ज्ञाताधर्मकथा में कर्म और अण्डों के रूपकों द्वारा क्रमशः यह समझाया गया है कि जो इन्द्रिय संयम नहीं करता है वह दुःख को प्राप्त होता है और जो साधना में अस्थिर-चित्त रहता है वह फल को प्राप्त नहीं करता है। इसी प्रकार 'संखा' में स्थानांग और समवायांग के समान संख्या के आधार पर वर्णित सामग्री हो। यद्यपि यह भी संभव हैं कि संखा नामक अध्ययन का सम्बन्ध सांख्य दर्शन से रहा हो। क्योंकि अन्य परम्पराओं के विचारों को प्रस्तुत करने की उदारता इस ग्रन्थ में थी। साथ ही प्राचीन काल में सांख्य श्रमणधारा का ही दर्शन था और जैन दर्शन से उसकी निकटता थी। ऐसा प्रतीत होता है कि अद्दागपसिणाइं, बाहुपसिणाइं आदि अध्यायों का सम्बन्ध भी निमित्तशास्त्र से न होकर इन नामवाले व्यक्तियों की तात्त्विक परिचर्चा से रहा हो जो क्रमशः आर्द्रक और बाहुक नामक ऋषियों की तत्त्वचर्चा से सम्बन्धित रहे होंगे। अद्दागपसिणाइं की टीकाकारों ने 'आदर्श प्रश्न' ऐसी जो संस्कृत छाया की है वह भी उचित नहीं है। उसकी संस्कृत छाया 'आर्द्रक प्रश्न' ऐसी होना चाहिए। आर्द्रक से हुए प्रश्नोत्तरों की चर्चा सूत्रकृतांग में मिलती है साथ ही वर्तमान ऋषिभाषित में भी 'अद्दाएण'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(आर्द्रक) और बाहु (बाहुक) नामक अध्ययन उपलब्ध हैं। हो सकता है कि कोमल और खोम-क्षोम भी कोई ऋषि रहे हैं। सोम का उल्लेख भी ऋषिभाषित में है। फिर भी यदि हम यह मानने को उत्सुक ही हों कि ये अध्ययन निमित्तशास्त्र से सम्बन्धित थे तो हमें यह मानना होगा कि यह सामग्री उसमें बाद में जुड़ी है, प्रारम्भ में उसका अंग नहीं थी। क्योंकि प्राचीनकाल में निमित्तशास्त्र का अध्ययन जैन भिक्षु के लिए वर्जित था और इसे पापश्रुत माना जाता था।[९]

स्थानांग और समवायांग दोनों में प्रश्नव्याकरण सम्बन्धी जो विवरण हैं, वे भी एक काल के नहीं हैं। समवायांग का विवरण परवर्ती है, क्योंकि उस विवरण में मूल तथ्य सुरक्षित रहते हुए भी निमित्तशास्त्र सम्बन्धी विवरण काफी विस्तृत हो गया है। स्थानांग में प्रश्नव्याकरण के दस अध्ययन बताये गये हैं जबकि समवायांग उसमें ४५ उद्देशक होने की सूचना देता है। 'उवमा' और 'संखा' नामक स्थानांग में वर्णित प्रारम्भिक दो अध्ययनों का यहाँ निर्देश ही नहीं है। हो सकता है कि 'उवमा' की सामग्री ज्ञाताधर्मकथा में और 'संखा' की सामग्री—यदि उसका सम्बन्ध संख्या से था तो स्थानांग या समवायांग में डाल दी गई हो। 'कोमलपसिणाइं' का भी उल्लेख नहीं है। इन तीनों के स्थान पर 'असि' 'मणि' और आदित्य' ये तीन नाम नये जुड़ गये हैं, पुनः इनका उल्लेख भी अध्ययनों के रूप में नहीं है। समवायांग का विवरण स्पष्टरूप से यह बताता है कि प्रश्नव्याकरण का वर्ण्य-विषय चमत्कारपूर्ण विविध विद्याओं से परिपूर्ण है। यहाँ इसिभासियाइं, आयरियभासियाइं और महावीरभासियाइं इन तीन अध्ययनों का विलोप कर यह निमित्तशास्त्र सम्बन्धी विवरण इनके द्वारा कथित है— यह कह दिया गया है।

वस्तुतः समवायांग का विवरण हमें प्रश्नव्याकरण के किसी दूसरे परिवर्धित संस्करण की सूचना देता है जिसमें नैमित्तशास्त्र से सम्बन्धित विवरण जोड़कर प्रत्येक बुद्धभाषित (ऋषिभाषित), आचार्यभाषित और वीरभाषित (महावीरभाषित) भाग अलग कर दिये गये थे और इस प्रकार इसे शुद्धरूप से एक निमित्तशास्त्र का ग्रन्थ बना दिया गया था। उसे प्रामाणिकता देने के लिए यहाँ तक कह दिया गया कि ये प्रत्येक बुद्ध, आचार्य और महावीरभाषित हैं।

तत्त्वार्थवार्तिक में प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु का जो विवरण उपलब्ध है वह इतना अवश्य सूचित करता है कि ग्रन्थकार के सामने प्रश्नव्याकरण की कोई प्रति नहीं थी उसने प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु के सम्बन्ध में जो विवरण दिया है, वह कल्पनाश्रित ही है। यद्यपि धवला में प्रश्नव्याकरण के सम्बन्ध में जो निमित्तशास्त्र से सम्बन्धित कुछ विवरण है, वह निश्चय ही यह बताता है कि ग्रन्थकार ने उसे अनुश्रुति के रूप में श्वेताम्बर या यापनीय परम्परा से प्राप्त किया होगा। धवला में वर्णित विषयवस्तु वाला कोई प्रश्नव्याकरण अस्तित्व में भी रहा होगा, यह कहना कठिन है।

जैसा कि हम पूर्व में कह चुके हैं कि समवायांग का प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु सम्बन्धी विवरण स्थानांग की अपेक्षा परवर्ती काल का है। फिर भी इसमें कुछ तथ्य ऐसे अवश्य हैं जो हमारी इस धारणा को पुष्ट करते हैं कि प्रश्नव्याकरण की मूलभूत विषयवस्तु ऋषिभाषित, आचार्यभाषित और महारवीरभाषित ही थी और जिसका अधिकांश भाग आज भी ऋषिभाषित आदि के रूप में सुरक्षित है। क्योंकि समवायांग में भी प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु को प्रत्येकबुद्धभाषित, आचार्यभाषित, महर्षिवीरभाषित कहा गया है। स्थानांग में जहाँ ऋषिभाषित शब्द है वहां समवायांग में प्रत्येकबुद्धभाषित शब्द है। यह स्पष्ट है कि ऋषिभाषित के प्रत्येक ऋषि को आगे चलकर जैनाचार्यों ने प्रत्येकबुद्ध के रूप में स्वीकार किया हैं[१०] और यह शब्द-परिवर्तन उसी का सूचक है। यही कारण है कि इसमें ऋषिभाषित के स्थान पर प्रत्येकबुद्धभाषित कहा गया है। हमारे कथन की पुष्टि का दूसरा आधार यह है कि समवायांग में प्रश्नव्याकरण के एक श्रुतस्कन्ध और ४५ अध्याय माने गये हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि समवायांग के प्रश्नव्याकरण की विषय-वस्तु सम्बन्धी इस विवरण के लिखे जाने तक भी यह अवधारणा अचेतनरूप में अवश्य थी कि प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु प्रत्येकबुद्धों, धर्माचार्यों और महावीर के उपदेशों से निर्मित थी, यद्यपि इस काल तक ऋषिभाषित को उससे अलग कर दिया गया होगा और उसके ४५ अध्ययनों के स्थान पर निमित्तशास्त्र सम्बन्धी विद्याएँ समाविष्ट कर दी गई होंगी। यद्यपि निमित्तशास्त्र के विषय जोड़ने का ही ऐसा कुछ प्रयत्न सीमितरूप में स्थानांग में प्रश्नव्याकरण सम्बन्धी विवरण लिखे जाने के पूर्व भी हुआ होगा। मेरी धारणा यह है कि प्रश्नव्याकरण में प्रथम निमित्तशास्त्र का विषय जुड़ा और फिर ऋषिभाषित वाला अंश अलग हुआ तथा बीच का कुछ काल ऐसा रहा जब वही विषयवस्तु दोनों में समनान्तर बनी रही। यहाँ हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि जहां स्थानांग में प्रश्नव्याकरण के दस अध्ययन होने का उल्लेख है, वहां समवायांग में इसके ४५ उद्देशन काल और नन्दी में ४५ अध्ययन होने का उल्लेख है- यह आकस्मिक नहीं है। यह उल्लेख प्रश्नव्याकरण और ऋषिभाषित की किसी साम्यता का संकेतक है। वर्तमान प्रश्नव्याकरण में दस अध्ययन होना भी सप्रयोजन है— स्थानाङ्ग के पूर्व विवरण से संगति बैठाने के लिए ही ऐसा किया गया होगा। दस और पैंतालीस के इस विवाद को सुलझाने के दो ही विकल्प हैं— प्रथम सम्भावना यह हो सकती है कि प्राचीन संस्करण में दस अध्याय रहे हों और उसके ऋषिभाषित वाले अध्याय के ४५ उद्देशक रहे हों अथवा मूल प्रश्नव्याकरण में वर्तमान ऋषिभाषित के ४५ अध्याय ही हों क्योंकि इनमें भी ऋषिभाषित के साथ महावीरभाषित और आचार्यभाषित का समावेश हो ही जाता है। यह भी सम्भव है कि वर्तमान ऋषिभाषित के ४५ अध्यायों में से कुछ अध्याय ऋषिभाषित के अन्तर्गत और कुछ आचार्यभाषित एवं कुछ महावीरभाषित के अन्तर्गत उद्देशकों के रूप में वर्गीकृत हुए हों। महत्त्वपूर्ण यह है कि समवायांग में प्रश्नव्याकरण के ४५ अध्ययन न कहकर ४५ उद्देशन काल कहा गया है, किन्तु प्रश्नव्याकरण से अलग करने के पश्चात् उन्हें एक ही ग्रन्थ के अन्तर्गत ४५ अध्यायों के रूप में रख दिया गया हो। एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि समवायांग में ऋषिभाषित के ४४ अध्ययन कहे गये हैं जबकि वर्तमान ऋषिभाषित में ४५ अध्ययन हैं। क्या वर्धमान नामक अध्ययन पहले इसमें सम्मिलित नहीं था। क्योंकि इसे

नामक अध्ययन पहले इसमें सम्मिलित नहीं था। क्योंकि इसे महावीरभाषित में परिगणित नहीं किया गया था या अन्य कोई कारण था, हम नहीं कह सकते। यह भी सम्भव है कि उत्कटवादी अध्याय में किसी ऋषि का उल्लेख नहीं है, साथ ही यह अध्याय चार्वाक दर्शन का प्रतिपादन करता है। अत: इसे ऋषिभाषित में स्वीकार नहीं किया हो। समवायांग और नन्दीसूत्र के मूलपाठों में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर यह है कि नन्दीसूत्र में प्रश्नव्याकरण के ४५ अध्ययन हैं— ऐसा स्पष्ट पाठ है[१२] जबकि समवायांग में ४५ अध्ययन, ऐसा पाठ न होकर ४५ उद्देशन काल है, मात्र यही पाठ है। हो सकता है कि समवायांग के रचना-काल तक वे उद्देशक रहे हों, किन्तु आगे चलकर वे अध्ययन कहे जाने लगे हों। यदि समवायांग के काल तक ४५ अध्ययनों की अवधारणा होती तो समवायांगकार उसका उल्लेख अवश्य करते क्योंकि समवायांग में अन्य अंग आगमों की चर्चा के प्रसंग में अध्ययनों का स्पष्ट उल्लेख है।

इस सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि क्या निमित्तशास्त्र एवं चामत्कारिक विद्याओं से युक्त कोई प्रश्नव्याकरण बना भी था या यह सब कल्पना की उड़ानें हैं? यह सत्य है कि प्रश्नव्याकरण की पद-संख्या का समवायांग, नन्दी, नन्दीचूर्णी और धवला में जो उल्लेख है, वह काल्पनिक है। यद्यपि समवायांग और नन्दी, प्रश्नव्याकरण के पदों की निश्चित संख्या नहीं देते हैं—मात्र संख्यात-शत-सहस्र- ऐसा उल्लेख करते हैं, किन्तु नन्दीचूर्णी एवं समवायांगवृत्ति[१३] में उसके पदों की संख्या ९२१६००० और धवला[१४] में ९३१६००० बतायी गई है, जो मुझे तो काल्पनिक ही अधिक लगती है।

मेरी अवधारणा यह है कि स्थानांग, समवायांग, नन्दी, तत्त्वार्थ, राजवार्तिक, धवला एवं जयधवला में प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु का जिस रूप में उल्लेख है वह पूर्णत: काल्पनिक चाहे न हो, किन्तु उसमें सत्यांश कम और कल्पना का पुट अधिक है। यद्यपि निमित्तशास्त्र के विषय को लेकर कोई प्रश्नव्याकरण अवश्य बना होगा, फिर भी उसमें समवायांग और धवला में वर्णित समग्र विषयवस्तु एवं चामत्कारिक विद्याएं रही होंगी यह कहना कठिन ही है।

इसी सन्दर्भ में समवायांग के मूलपाठ 'अद्दागंगुट्ठबाहुअसिमणि खोमआइच्चभासियाणं[१५] के अर्थ के सम्बन्ध में भी यहां हमें पुनर्विचार करना होगा। कहीं **अद्दाग**, अंगुष्ठ, बाहु, असि, मणि, खोम (क्षोम) और आदित्य व्यक्ति तो नहीं हैं- क्योंकि इनके द्वारा भाषित कहने का क्या अर्थ है? स्थानाङ्ग के विवरण की समीक्षा करते हुए जैसी कि मैंने सम्भावना प्रकट की है कि कहीं **अद्दाग-आर्द्रक**, बाहु-बाहुक, खोम-सोम नामक ऋषि तो नहीं है, क्योंकि ऋषिभाषित में इनके उल्लेख हैं। आदित्य भी कोई ऋषि हो सकते हैं। केवल अंगुठ्ठ, असि और मणि ये तीन नाम अवश्य ऐसे हैं, जिनके व्यक्ति होने की सम्भावना धूमिल है।

इस समग्र चर्चा का फलित तो मात्र यही है कि प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु समय-समय पर बदलती रही है।

क्या प्रश्नव्याकरण की प्राचीन विषयवस्तु सुरक्षित है?

यहां यह चर्चा भी महत्त्वपूर्ण है कि क्या प्रश्नव्याकरण के प्रथम और द्वितीय संस्कारों की विषयवस्तु पूर्णत: नष्ट हो गई है या वह आज भी पूर्णत: या आंशिक रूप में सुरक्षित है।

मेरी दृष्टि में प्रश्नव्याकरण के प्रथम संस्करण में ऋषिभाषित, आचार्यभाषित और महावीरभाषित के नाम से जो सामग्री थी वह आज भी ऋषिभाषित, ज्ञाताधर्मकथा, सूत्रकृतांग एवं उत्तराध्ययन में बहुत कुछ सुरक्षित है। ऐसा लगता है कि ईस्वी सन् के पूर्व ही उस सामग्री को वहां से अलग कर इसिभासियाइं के नाम से स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में सुरक्षित कर लिया गया था। जैन परम्परा में ऐसे प्रयास अनेक बार हुए हैं जब चूला या चूलिका के रूप में ग्रन्थों में नवीन सामग्री जोड़ी जाती रही अथवा किसी ग्रन्थ की सामग्री को निकालकर उससे एक नया ग्रन्थ बना दिया। उदाहरण के रूप में किसी समय निशीथ को आचारांग की चूला के रूप में जोड़ा गया और कालान्तर में उसे वहाँ से अलग कर निशीथ नामक नया ग्रन्थ ही बना दिया गया। इसी प्रकार आयारदशा (दशाश्रुतस्कन्ध) के आठवें अध्याय (पर्युषणकल्प) की सामग्री से कल्पसूत्र नामक एक नया ग्रन्थ ही बना दिया गया। अत: यह मानने में कोई आपत्ति नहीं है कि पहले प्रश्नव्याकरण में इसिभासियाइं के अध्याय जुड़ते रहे हों और फिर अध्ययनों की सामग्री को वहां से अलग कर इसिभासियाइं नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ अस्तित्व में आया हो। मेरा यह कथन निराधार भी नहीं है। प्रथम तो दोनों नामों की साम्यता तो है ही। साथ ही समवायांग में यह भी स्पष्ट उल्लेख है कि प्रश्नव्याकरण में स्वसमय और परसमय के प्रज्ञापक प्रत्येकबुद्धों के कथन हैं। (पण्हावागरणदसासुणं ससमय-परसमय पण्णवय-पत्तेअबुद्ध ....भासियाइणं, समवायांग ५४७)। इसिभासियाइं के सम्बन्ध में यह स्पष्ट मान्यता है कि उसमें प्रत्येकबुद्धों के वचन हैं। मात्र यही नहीं समवायांग 'स-समय-पर समय पण्णवय पत्तेअबुद्ध-अर्थात् स्वसमय एवं परसमय के प्रज्ञापक प्रत्येक बुद्ध का उल्लेख कर इसकी पुष्टि भी कर देता है कि वे प्रत्येक बुद्ध मात्र जैन परंपरा के नहीं हैं, अपितु अन्य परम्पराओं के भी है। इसिभासियाइं में मंखलिगोशाल, देवनारद, असितदेवल, याज्ञवल्क्य, उद्दालक आदि से सम्बन्धित अध्याय भी इसी तथ्य को सूचित करते हैं। मेरी दृष्टि में प्रश्नव्याकरण का प्राचीनतम अधिकांश भाग आज भी इसिभासियाइं में तथा कुछ भाग सूत्रकृतांग, ज्ञाताधर्मकथा और उत्तराध्ययन के कुछ अध्यायों के रूप में सुरक्षित है। प्रश्नव्याकरण का इसिभासियाइं वाला अंश वर्तमान इसिभासियाइं (ऋषिभाषित), महावीरभासियाइं में तथा आयरियभासियाइं का कुछ अंश उत्तराध्ययन के अध्यनों में सुरक्षित है। ऋषिभाषित के तेत्तलिपुत्र नामक अध्याय की विषय सामग्री ज्ञाताधर्मकथा के १४वें तेत्तलिपुत्र नामक अध्याय में आज भी उपलब्ध है।

उत्तराध्ययन के अनेक अध्याय प्रश्नव्याकरण के अंश थे, इसकी पुष्टि अनेक आधारों से की जा सकती है। सर्वप्रथम उत्तराध्ययन नाम ही इस तथ्य को सूचित करता है कि यह किसी ग्रन्थ के उत्तर-अध्ययनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से बना हुआ ग्रन्थ है। इसका तात्पर्य है कि इसकी विषय-सामग्री पूर्व में किसी ग्रन्थ का उत्तरवर्ती अंश रही होगी। इस तथ्य की पुष्टि का दूसरा किन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण प्रमाण यह है कि उत्तराध्ययननिर्युक्ति गाथा ४ में इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि उत्तराध्ययन का कुछ भाग अंग साहित्य से लिया गया है। उत्तराध्ययन निर्युक्ति की इस गाथा का तात्पर्य यह है कि बन्धन और मुक्ति से सम्बन्धित जिनभाषित और प्रत्येकबुद्ध के संवादरूप इसके कुछ अध्ययन अंग ग्रन्थों से लिये गये है। निर्युक्तिकार का यह कथन तीन मुख्य बातों पर प्रकाश डालता है। प्रथम तो यह कि उत्तराध्ययन के जो ३६ अध्ययन हैं, उनमें कुछ जिनभाषित (महावीरभाषित) और कुछ प्रत्येकबुद्धों के संवाद रूप है तथा अंग साहित्य से लिये गये हैं। अब यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि वह अंग-ग्रन्थ कौन सा था, जिससे उत्तराध्ययन के ये भाग लिये गये? कुछ आचार्यों ने दृष्टिवाद से इसके परिषह आदि अध्यायों को लिये जाने की कल्पना की है, किन्तु मेरी दृष्टि में इसका कोई आधार नहीं है। इसकी सामग्री उसी ग्रन्थ से ली जा सकती है जिसमें महावीरभाषित और प्रत्येकबुद्ध भाषित विषयवस्तु हो। इसप्रकार विषयवस्तु प्रश्नव्याकरण की ही थी अत: उससे ही इन्हें लिया गया होगा। यह बात निर्विवाद रूप से स्वीकार की जा सकती है कि चाहे उत्तराध्ययन के समस्त अध्ययन तो नहीं, किन्तु कुछ अध्ययन तो अवश्य ही महावीरभाषित हैं। एक बार हम उत्तराध्ययन के ३६ वें अध्ययन एवं उसके अन्त में दी हुई उस गाथा को जिसमें उसका महावीरभाषित होना स्वीकार किया गया है, परवर्ती एवं प्रक्षिप्त मान भी लें, किन्तु उसके १८ वें अध्ययन की २४ वीं गाथा जो न केवल इसी गाथा के सरूप है, अपितु भाषा की दृष्टि से भी उसकी अपेक्षा प्राचीन लगती है— प्रक्षिप्त नहीं कही जा सकती। यदि उत्तराध्ययन के कुछ अध्ययन जिनभाषित एवं कुछ प्रत्येकबुद्धों के सम्वादरूप हैं तो हमें यह देखना होगा कि वे किस अंग ग्रन्थ के भाग हो सकते हैं। प्रश्नव्याकरण की प्राचीन विषयवस्तु का निर्देश करते हुए स्थानांग, समवायांग और नन्दीसूत्र में उसके अध्यायों को महावीरभाषित एवं प्रत्येकबुद्धभाषित कहा गया है। इससे यही सिद्ध होता है कि उत्तराध्ययन के अनेक अध्याय पूर्व में प्रश्नव्याकरण के अंश रहे हैं। उत्तराध्ययन के अध्यायों के वक्ता के रूप में देखें तो स्पष्टरूप से उनमें नमिपव्वज्जा, कापिलीय, संजयीया आदि जैसे कई अध्ययन प्रत्येक बुद्धों के सम्वादरूप मिलते हैं। जबकि विनयसुत्त, परिषह विभक्ति, संस्कृत, अकाममरणीय, क्षुल्लक-निर्ग्रन्थीय, **दुमपत्रक**, बहुश्रुतपूजा जैसे कुछ अध्याय महावीरभाषित हैं और केसी-गौतमीय, **गद्दमीय** आदि कुछ अध्याय आचार्यभाषित कहे जा सकते हैं। अत: प्रश्नव्याकरण के प्राचीन संस्कार की विषय-सामग्री से इस उत्तराध्ययन के अनेक अध्यायों का निर्माण हुआ है।

यद्यपि समवायांग एवं नन्दीसूत्र में उत्तराध्ययन का नाम आया है, किन्तु स्थानांग में कहीं भी उत्तराध्ययन का नामोल्लेख नहीं है। जैसा कि हम पूर्व में निर्देश कर चुके है स्थानाङ्ग ही ऐसा प्रथम ग्रन्थ है जो जैन आगम-साहित्य के प्राचीनतम स्वरूप की सूचना देता है। मुझे ऐसा लगता है कि स्थानांग में प्रस्तुत जैन साहित्य-विवरण के पूर्व तक उत्तराध्ययन एक स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में अस्तित्व में नहीं आया था, अपितु वह प्रश्नव्याकरण के एक भाग के रूप में था।

पुन: उत्तराध्ययन का महावीरभाषित होना उसे प्रश्नव्याकरण के अधीन मानने से ही सिद्ध हो सकता है। उत्तराध्ययन की विषयवस्तु का निर्देश करते हुए यह भी कहा गया है कि ३६ अपृष्ट का व्याख्यान करने के पश्चात् ३७वें प्रधान नामक अध्ययन का वर्णन करते हुए भगवान परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु की चर्चा करते हुए उसमें पृष्ट, अपृष्ट और पृष्टापृष्ट प्रश्नों का विवेचन होना बताया गया है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि प्रश्नव्याकरण और उत्तराध्ययन की समरूपता है और उत्तराध्ययन में अपृष्ट प्रश्नों का व्याकरण है।

हम यह भी सुस्पष्ट रूप से बता चुके हैं कि पूर्व में ऋषिभाषित ही प्रश्नव्याकरण का एक भाग था। ऋषिभाषित को परवर्ती आचार्यों ने प्रत्येकबुद्धभाषित कहा है। उत्तराध्ययन के भी कुछ अध्ययनों को प्रत्येकबुद्धभाषित कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि उत्तराध्ययन एवं ऋषिभाषित एक दूसरे से निकटरूप से सम्बन्धित थे और किसी एक ही ग्रन्थ के भाग थे। हरिभद्र (८वीं शती) आवश्यकनिर्युक्ति की वृत्ति (८/५) में ऋषिभाषित और उत्तराध्ययन को एक मानते हैं। तेरहवीं शताब्दी तक भी जैन आचार्यों में ऐसी धारणा चली आ रही थी कि ऋषिभाषित का समावेश उत्तराध्ययन में हो जाता है। जिनप्रभसूरि की विधिमार्गप्रपा में, जो १४ वीं शताब्दी की एक रचना है— स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि कुछ आचार्यों के मत में ऋषिभाषित का अन्तर्भाव उत्तराध्ययन में हो जाता है। यदि हम उत्तराध्ययन और ऋषिभाषित को समग्र रूप में एक ग्रन्थ मानें तो ऐसा लगता है कि उस ग्रन्थ का पूर्ववर्ती भाग ऋषिभाषित और उत्तरवर्ती भाग उत्तराध्ययन कहा जाता था।

यह तो हुई प्रश्नव्याकरण के प्राचीनतम प्रथम संस्करण की बात। अब यह विचार करना है कि प्रश्नव्याकरण के निमित्तशास्त्र प्रधान दूसरे संस्करण की क्या स्थिति हो सकती है- क्या वह भी किसी रूप में सुरक्षित है?

जहां तक निमित्तशास्त्र से सम्बन्धित प्रश्नव्याकरण के दूसरे संस्करण के अस्तित्व में होने का प्रश्न है— मेरी दृष्टि में वह भी पूर्णतया विलुप्त नहीं हुआ है, अपितु मात्र हुआ यह है कि उसे प्रश्नव्याकरण से पृथक् कर उसके स्थान पर आश्रयद्वार और संवरद्वार नामक नई विषयवस्तु डाल दी गई है। श्री अगरचन्द जी नाहटा ने जिनवाणी, दिसम्बर १९८० में प्रकाशित अपने लेख में प्रश्नव्याकरण नामक कुछ अन्य ग्रन्थों का संकेत किया है। 'प्रश्नव्याकरणाख्य जयपायड' के नाम से एक ग्रन्थ मुनि जिनविजयजी ने सिंघी जैन ग्रन्थमाला के ग्रन्थ क्रमांक ४३ में संवत् २०१५ में प्रकाशित किया है। यह ग्रन्थ एक प्राचीन ताड़पत्रीय प्रति के आधार पर प्रकाशित किया गया है। ताड़पत्रीय प्रति खरतरगच्छ के आचार्य शाखा के ज्ञानभण्डार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसलमेर से प्राप्त हुई थी और यह विक्रम संवत् १३३६ की लिखी हुई थी। ग्रन्थ मूलतः प्राकृत भाषा में हैं और उसमें ३७८ गाथाएं हैं। उसके साथ संस्कृत टीका भी है। यह प्रकाशित ग्रन्थ पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी के पुस्कालय में है। ग्रन्थ का विषय निमित्तशास्त्र से सम्बन्धित है। इसी प्रकार जिनरत्नकोश में भी शान्तिनाथ भण्डार खंभात में उपलब्ध जयपाहुड प्रश्नव्याकरण, नामक ग्रन्थ की सूचना उपलब्ध होती है।[१७] यद्यपि इसकी गाथा संख्या २२८ बताई गई है। एक अन्य प्रश्नव्याकरण नामक ग्रन्थ की सूचना हमें नेपाल के महाराजा की लायब्रेरी से प्राप्त होती है। श्री अगरचन्द जी नाहटा की सूचना के अनुसार इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि तेरापन्थ धर्मसंघ के आचार्य मुनिश्री नथमलजी ने प्राप्त कर ली है। इस लेख के प्रकाशन के पूर्व श्री जौहरीमल जी पारख, रावटी, जोधपुर के सौजन्य से इस ग्रन्थ की फोटो कापी पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान को प्राप्त हो गई है। इसे अभी पूरा पढ़ा तो नहीं जा सका है, किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर ज्ञात हुआ कि इसकी मूलगाथाएं तो सिंघी जैन ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित कृति के समान ही हैं, किन्तु टीका भिन्न है। इसकी एक अन्य फोटो कापी लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद से भी प्राप्त हुई है। एक अन्य प्रश्नव्याकरण की सूचना हमें पाटन ज्ञान भण्डार की सूची से प्राप्त होती है। यह ग्रन्थ भी चूड़ामणि नामक टीका के साथ है और टीका का ग्रन्थांक २३०० श्लोक परिमाण बताया गया है। यह प्रति भी काफी पुरानी हो सकती है।[१८]

इस सब आधारों से ऐसा लगता है कि प्रश्नव्याकरण का निमित्तशास्त्र से सम्बन्धित संस्करण भी पूरी तरह विलुप्त नहीं हुआ होगा, अपितु उसे उससे अलग करके सुरक्षित कर लिया गया हो। यदि कोई विद्वान् इन सब ग्रन्थों को लेकर उनकी विषयवस्तु को समवायांग, नन्दीसूत्र एवं धवला में प्रश्नव्याकरण की उल्लिखित विषय सामग्री के साथ मिलान करे तो यह पता चल सकेगा कि प्रश्नव्याकरण नामक जो अन्य ग्रन्थ उपलब्ध हैं वे प्रश्नव्याकरण के द्वितीय संस्करण के ही अंश हैं या अन्य हैं। यह भी सम्भव है कि समवायांग और नन्दी के रचनाकाल में प्रश्नव्याकरण नामक कई ग्रन्थ वाचना-भेद से प्रचलित हो और उनमें उन सभी विषयवस्तु को समाहित किया गया हो। इस मान्यता का एक आधार यह है कि ऋषिभाषित, समवायांग, नन्दी एवं अनुयोगद्वार में वागरणगंथा एवं पण्हावागरणाइं'- ऐसे बहुवचन प्रयोग मिलते हैं। इससे ऐसा लगता है कि इस काल में वाचनाभेद से या अन्य रूप अनेक प्रश्नव्याकरण उपस्थित रहे होंगे।

इन प्रश्नव्याकरणों की संस्कृत टीका सहित ताड़पत्रीय प्रतियां मिलना इस बात की अवश्य सूचक हैं कि ईसा की ४-५वीं शती में ये ग्रन्थ अस्तित्व में थे, क्योंकि ९-१०वीं शताब्दी में जब इनकी टीकाएं लिखी गईं, तो उसके पूर्व भी ये ग्रन्थ अपने मूल रूप में रहे होंगे।

सम्भवतः ईसा की लगभग २-३री शताब्दी में प्रश्नव्याकरण में निमित्तशास्त्र सम्बन्धी सामग्री जोड़ी गई हो और फिर उसमें से ऋषिभाषित का हिस्सा अलग किया गया और उसे विशिष्ट रूप से एक निमित्तशास्त्र का ग्रन्थ बना दिया गया। पुनः लगभग ७वीं शताब्दी में यह निमित्तशास्त्र वाला हिस्सा अलग किया गया और उसके स्थान पर पांच आश्रव तथा पाँच संवरद्वार वाला वर्तमान संस्करण रखा गया। जैसा कि मैंने सूचित किया कि प्रश्नव्याकरण के पूर्व के दो संस्करण भी चाहे उससे पृथक् कर दिये गये हों किन्तु वे ऋषिभाषित, उत्तराध्ययन और प्रश्नव्याकरण नामक अन्य निमित्तशास्त्र के ग्रन्थों के रूप में अपना अस्तित्व रख रहे हैं। आशा है, इस सम्बन्ध में विद्वद्वर्ग आगे और मन्थन करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचेगा।

प्रश्नव्याकरण और ऋषिभाषित की विषयवस्तु की समरूपता का प्रमाण

ऋषिभाषित और प्राचीन प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तुओं की एकरूपता का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रमाण हमें ऋषिभाषित के पार्श्व नामक ३१ वें अध्ययन में मिल जाता है। इसमें पार्श्व की दार्शनिक अवधारणाओं की चर्चा है। इस चर्चा के प्रसंग में ग्रन्थकार ने स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया है कि व्याकरणप्रभृति ग्रन्थों में समाहित इस अध्ययन का ऐसा दूसरा पाठ भी मिलता है। यह मूलपाठ इस प्रकार है—

वागरणगंथाओं पभिति सामित्तं
इमं अज्झयणं ताव इमो बीओ पाढो दिस्सति[१९]

इसका तात्पर्य तो यह है कि ऋषिभाषित की विषयवस्तु प्रश्नव्याकरण में भी सामहित थी। यद्यपि यह एक विवादास्पद प्रश्न होगा कि प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु से ऋषिभाषित का निर्माण हुआ या ऋषिभाषित की विषयवस्तु से प्रश्नव्याकरण का। लेकिन यह सुस्पष्ट है कि किसी समय प्रश्नव्याकरण और ऋषिभाषित की विषयवस्तु समान थी और उनमें कुछ पाठान्तर भी थे। अतः वर्तमान ऋषिभाषित में प्राचीन प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु का होना निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है। साथ ही यह भी सिद्ध हो जाता है कि मूल प्रश्नव्याकरण में पार्श्व आदि प्राचीन अर्हत् ऋषियों के दार्शनिक विचार एवं उपदेश निहित थे।

प्रश्नव्याकरण और जयपायड की विषयवस्तु की आंशिक समानता

'प्रश्नव्याकरणाख्य जयपायड' नामक जिस ग्रन्थ का हमने उल्लेख किया है, उसकी विषय सामग्री निमित्तशास्त्र से सम्बन्धित है। पुनः उसमें कर्ता ने तीसरी गाथा में 'पण्हं जयपायडं वोच्छं' कहकर के प्रश्नव्याकरण और जयपायड की समरूपता को स्पष्ट किया है।[२०] प्रस्तुत ग्रन्थ की इसी गाथा की टीका में ग्रन्थ की विषयवस्तु को स्पष्ट करते हुये कहा गया है कि इसमें 'नष्टमुष्टिचिन्तालाभालाभसुखदुःखजीवनमरण' आदि सम्बन्धी प्रश्न हैं। इस उल्लेख से ऐसा लगता है कि धवलाकार ने प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु का जिस रूप में उल्लेख किया है उसकी इससे बहुत कुछ समानता है।[२१] प्रस्तुत ग्रन्थ के विषयों में मुष्टिविभाग प्रकरण, नष्टिका चक्र, संख्या प्रमाण, लाभ प्रकरण, अस्त्रविभाग प्रकरण आदि ऐसे हैं जिनकी विषयवस्तु समवायांग में प्रश्नव्याकरण के वर्णित विषयों से यत्किंचित् समान हो सकती है।[२२]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्भाग्य यह है कि प्रकाशित होते हुए भी विद्वानों को इस ग्रन्थ की जानकारी नहीं है। यह जैन निमित्तशास्त्र का प्राचीन एवं प्रमुख ग्रन्थ है।

ग्रन्थ की भाषा को देखकर सामान्यतया यह अनुमान किया जा सकता है कि यह ईस्वी सन् की चौथी-पाँचवी शताब्दी की हो सकती है। ग्रन्थ के लिए प्रयुक्त पायड या पाहुड शब्द से भी यह फलित होता है कि यह ग्रन्थ लगभग पाँचवी शताब्दी के आसपास की रचना होना चाहिए, क्योंकि कसायपाहुड एवं कुन्दकुन्द के पाहुड ग्रन्थ इसी कालावधि के कुछ पूर्व की रचनाएं हैं। सूर्यप्रज्ञप्ति में भी विषयों का वर्गीकरण पाहुडों के रूप में हुआ है। अतः यह सम्भावना हो सकती है कि जयपायड प्रश्नव्याकरण के द्वितीय संस्करण का कोई रूप हो, यद्यपि इस सम्बन्ध में अन्तिमरूप से तभी कुछ कहा जा सकता है जब प्रश्नव्याकरण के नाम से मिलने वाली सभी रचनाएं हमारे समक्ष उपस्थित हों और इनका प्रामाणिक रूप से अध्ययन किया जाये।

विषय-सामग्री में परिवर्तन क्यों?

यद्यपि यहां यह प्रश्न स्वाभाविकरूप से उठता है कि प्रथम ऋषिभाषित, आचार्यभाषित, महावीरभाषित आदि भाग को हटाकर उसमें निमित्तशास्त्र सम्बन्धी विवरण रखना और फिर निमित्तशास्त्र सम्बन्धी विवरण हटाकर आश्रवद्वार और संवरद्वार सम्बन्धी विवरण रखना- यह सब क्यों हुआ? सर्वप्रथम ऋषिभाषित आदि भाग क्यों हटाया गया? मेरी दृष्टि में इसका कारण यह है कि ऋषिभाषित में अधिकांशतः अजैन परम्परा के (ऋषियों के उपदेश एवं विचार संकलित थे- इसके पठन-पाठन से एक उदार दृष्टिकोण का विकास तो होता था, किन्तु जैनधर्म संघ के प्रति अटूट श्रद्धा खण्डित होती थी तथा परिणामस्वरूप संघीय व्यवस्था के लिए अपेक्षित धार्मिक कट्टरता और आस्था टिक नहीं पाती थी। इससे धर्मसंघ को खतरा था। पुनः यह युग चमत्कारों द्वारा लोगों को अपने धर्मसंघ के प्रति आकर्षित करने और उनकी धार्मिक श्रद्धा को दृढ़ करने का था— चूंकि तत्कालीन जैन परम्परा के साहित्य में इसका अभाव था, अतः उसे जोड़ना जरूरी था। समवायांग में प्रश्नव्याकरण सम्बन्धी जो विवरण उपलब्ध हैं उससे भी इस तथ्य की पुष्टि होती है— उसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि लोगों को जिनप्रवचन में स्थित करने के लिए, उनकी मति को विस्मित करने के लिए सर्वज्ञ के वचनों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए इसमें— महाप्रश्नविद्या, मनःप्रश्नविद्या, देवप्रयाग आदि का उल्लेख किया गया है। यद्यपि यह आश्चर्यजनक है कि एक ओर निमित्तशास्त्र को पापसूत्र कहा गया, किन्तु संघहित के लिए दूसरी ओर उसे अंग आगम में सम्मिलित कर लिया गया, क्योंकि जब तक उसे अंग साहित्य का भाग बनाकर जिनप्रणीत नहीं कहा जाता तब तक लोगों की आस्था उस पर टिक नहीं पाती और जिनप्रवचन की अतिशयता प्रकट नहीं होती। अतः प्रश्नव्याकरण की विषयवस्तु में परिवर्तन करने का दोहरा लाभ था एक ओर अन्यतीर्थिक ऋषियों के वचनों को उससे अलग किया जा सकता था और दूसरी ओर उसमें निमित्तशास्त्र सम्बन्धी नई सामग्री जोड़कर उसकी प्रामाणिकता को भी सिद्ध किया जा सकता था। किन्तु जब परवर्ती आचार्यों ने इसका दुरुपयोग होते देखा होगा और मुनिवर्ग को साधना से विरत होकर इन्हीं नैमित्तिक विद्याओं की उपासना में रत देखा होगा तो उन्होंने यह नैमित्तिक विद्याओं से युक्त विवरण उससे अलग कर उसमें पांच आश्रवद्वार और पांच संवरद्वार वाला विवरण रख दिया। प्रश्नव्याकरण के टीकाकार अभयदेव एवं ज्ञानविमल ने भी विषय-परिवर्तन के लिए यही तर्क स्वीकार किया है।[२३]

प्रश्नव्याकरण की प्राचीन विषयवस्तु कब उससे अलग कर दी गई और उसके स्थान पर पांच आश्रवद्वार और पांच संवरद्वार रूप नवीन विषयवस्तु रख दी गई, यह प्रश्न भी विचारणीय है। अभयदेवसूरे ने अपनी स्थानांग और समवायांग की टीका में भी यह स्पष्ट निर्देश किया है कि वर्तमान प्रश्नव्याकरण में इनमें सूचित विषयवस्तु उपलब्ध नहीं है।[२४] मात्र यही नहीं, उन्होंने पांच आश्रवद्वार और पांच संवरद्वार वाले वर्तमान में उपलब्ध प्रश्नव्याकरण पर ही टीका लिखी है। अतः वर्तमान संस्करण की निम्नतम सीमा अभयदेव के काल अर्थात् ईस्वी सन् १०८० से पूर्ववर्ती होना चाहिए। पुनः अभयदेव ने प्रश्नव्याकरण में एक श्रुतस्कन्ध है या दो श्रुतस्कन्ध है इस समस्या को उठाते हुए अपनी वृत्ति की पूर्वपीठिका में अपने से पूर्ववर्ती आचार्य का मत उद्धृत किया है— 'दो सुयसंघा पण्णत्ता आसवदारा य संवरदारा य-।' अभयदेव ने पूर्वाचार्य की मान्यता को अस्वीकार भी किया है और यह भी कहा है कि यह दो श्रुतस्कन्धों की मान्यता रूढ़ नहीं है। सम्भवतः उन्होंने अपना एक श्रुतस्कन्ध सम्बन्धी मत समवायांग और नन्दी के आधार पर बनाया हो। इसका अर्थ यह भी है कि अभयदेव के पूर्व भी प्रश्नव्याकरण के वर्तमान संस्करण पर प्राकृत भाषा में ही कोई व्याख्या लिखी गई थी, जिसमें दो श्रुतस्कन्ध की मान्यता को पुष्ट किया गया था। उसका काल अभयदेव से २-३ शताब्दी पूर्व अर्थात् ईसा की ८ वीं शताब्दी के लगभग अवश्य रहा होगा। पुनः आचार्य जिनदासगणि महत्तर ने नन्दीसूत्र पर शक संवत् ५९८ अर्थात् ईस्वी सन् ६७६ ई० में अपनी चूर्णी समाप्त की थी।[२५] उस चूर्णी में उन्होंने प्रश्नव्याकरण में पंचसंवरादि की व्याख्या होने का स्पष्ट निर्देश किया है।[२६] इससे भी यह सिद्ध हो जाता है कि ईस्वी सन् ६७६ के पूर्व प्रश्नव्याकरण का पंचसंवरद्वारों से युक्त संस्करण प्रसार में आ गया था, अर्थात् आगमों के लेखनकाल के पश्चात् लगभग सौ वर्ष की अवधि में वर्तमान प्रश्नव्याकरण अस्तित्व में अवश्य आ गया था। प्रस्तुत प्रश्नव्याकरण की प्रथम गाथा, जिसमें 'वोच्छामि' कहकर ग्रन्थ के कथन का निश्चय सूचित किया गया है, की रचना शेष सभी अंग आगमों के प्रारम्भिक कथन से बिलकुल भिन्न है। यह ५वीं-६ठीं शताब्दी में रचित ग्रन्थों की प्रथम प्राक्कथन गाथा के समान ही है। अतः प्रस्तुत प्रश्नव्याकरण रचनाकाल ईसा की छठीं शताब्दी माना जा सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वह प्रश्नव्याकरण जिसमें उसकी विषयवस्तु ऋषिभाषित की विषयवस्तु के समरूप थी, प्राचीनतम संस्करण है जो लगभग ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी की रचना होगी। फिर ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी में उसमें निमित्तशास्त्र सम्बन्धी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवरण जुड़े जिनकी सूचना उसके स्थानांग के विवरण से मिलती है। इसके पश्चात् ईसा की चौथी शताब्दी में ऋषिभाषित आदि भाग अलग किये गये और उसे निमित्तशास्त्र का ग्रन्थ बना दिया, समवायांग का विवरण इसका साक्षी है। इस काल में प्रश्नव्याकरण के नाम से वाचनाभेद से अनेक ग्रन्थ अस्तित्व में थे ऐसी भी सूचना हमें आगम साहित्य से मिल जाती है। लगभग ईसा की ६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में इन ग्रन्थों के स्थान पर वर्तमान प्रश्नव्याकरण सूत्र का आश्रव एवं संवर के विवेचन से युक्त वह संस्करण अस्तित्व में आया है जो वर्तमान में हमें उपलब्ध है। यह प्रश्नव्याकरण का अन्तिम संस्करण जहां तक प्रश्नव्याकरण के उपर्युक्त दो प्राचीन लुप्त संस्करणों की विषयवस्तु का प्रश्न है, उसमें से प्रथम संस्करण की विषयवस्तु अधिकांश रूप से एवं कुछ परिवर्तनों के साथ वर्तमान में उपलब्ध ऋषिभाषित (इसिभासियाइं), उत्तराध्ययन, सूत्रकृतांग एवं ज्ञाताधर्मकथा में समाहित है। द्वितीय निमित्तशास्त्र सम्बन्धी संस्करण की विषयवस्तु, जयपायड और प्रश्नव्याकरण के नाम से उपलब्ध अन्य निमित्तशास्त्रों के ग्रन्थों में हो सकती है। यद्यपि इस सम्बन्ध में विशेषरूप से शोध की आवश्यकता है। आशा है विद्वद्जन इस दिशा में ध्यान देंगे।

सन्दर्भ

१. पण्हावागरणेसु अट्ठुत्तरं पसिणसयं अट्ठुत्तरं अपसिणसयं अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं विज्जाइसया नाग-सुवन्नेहिं सद्धिं दिव्व संवाया आघविज्जंति। —समवायांगसूत्र, ५४६।

२. वागरणगंथाओ पभिति...........। इसिभासियाइं- ३१।

३. पण्हावागरणदसाणं दस अज्झयणा पण्णत्ता, तं जहा-उवमा, संख, इसिभासियाइं, आयरियभासियाइं, महावीरभासियाइं, खोमगपसिणइं, कोमलपसिणाइं, अद्दागपसिणाइं, अंगुट्ठपसिणाइं, बाहुपसिणाइं। —स्थानांगसूत्र, १०/११६

४. से किं तं पण्हावागरणाणि? पण्हावागरणेसु अट्ठुत्तरं पसिणसयं अट्ठुत्तरं अपसिणसयं, अट्ठुत्तरं सिणापसिणसयं विज्जाइसया नाग-सुवन्नेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति।

५. पण्हावागरणदसासु णं ससमय-परसमय पण्णवय-पत्तेअबुद्ध-विविहत्थभासा-भासियाणं अइसयगुण-उवसम-णाणप्पगार-आयरियभासियाणं वित्थरेणं, वीरमहेसीहिं विविहवित्थरभासियाणं च जगहियाणं अद्दागंगुट्ठ-बाहु-असि-मणि-खोम-आइच्चभासियाणं विविहमहापसिणविज्जा-मणपसिणविज्जा-देवयपयोग-पहाण-गुणप्पगासियाणं सब्भूयदुगुणप्पभाव-नरगणमइविम्हयकराणं अइसयमईयकालसमय-दम-सम-तित्थकरुत्तमस्स ठिइकरणकारणाणं दुरहिगम-दुरवगाहस्स सव्वसव्वन्नुसम्मअस्स अबुह-जण-विबोहणकरस्स पच्चक्खयपच्चयकराणं पण्हाणं विविहगुणमहत्था जिणवरप्पणीया आघविज्जंति।

पण्हावागरणेसु णं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ संगहणीओ।

से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं पण्णत्ताइं। संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणंता थावरा, सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्ञति उवदंसिज्जंति। से एवं आया, से एवं णाया, एवं विण्णाया, एवं चरण-करणपरूवणया आघविज्जंति। से त्तं पण्हावागरणाइं १०।

— समवायांगसूत्र, ५४६-५४९।

५. से किं तं पण्हावागरणाइं? पण्हावागरणेसु णं-अट्ठुत्तरं पसिणसयं, अट्ठुत्तरं अपसिणसयं, अट्ठुत्तर पसिणापणिसयं, तंजहा-अंगुट्ठपसिणाइं, बाहुपसिणाइं अद्दागपसिणाइं, अन्नेवि विचित्ता विज्जाइसया, नाग-सुवण्णेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जन्ति।

पण्हावागरणाणं परित्ता वायणा, संखेज्जा अणुओगदारा, संखेज्जा वेढा, संखेज्जा सिलोगा, संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, संखेज्जाओ, संगहणीओ, संखेज्जाओ पडिवत्तीओ।

से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे, एगे सुयक्खंधे, पणयालीसं अज्झयणा, पणयालीसं उद्देसणकाला, पणयालीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं, संखेज्जा अक्खरा, अणंता गमा, अणंता पज्जवा, परित्ता तसा, अणन्ता थावरा, सासयकडनिबद्धनिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जन्ति, पण्णविज्जन्ति, परूविज्जन्ति, दंसिज्जन्ति, निदंसिज्जन्ति, उवदंसिज्जन्ति।

से एवं आया, एवं नाया एवं विण्णाया, एवं चरणकरणपरूवणा आघविज्जई, स त्तं पण्हावागरणाइं। — नन्दीसूत्र,५४।

६. आक्षेपविक्षेपैर्हेतुनयाश्रितानां प्रश्नानां व्याकरणं प्रश्नव्याकरणम्, तस्मिंल्लौकिकवैदिकानामर्थानां निर्णयः। —तत्त्वार्थवार्तिक, १/२० (पृ० ७३-७४)।

७. अक्खेवणी विक्खेवणी संवेयणी णिव्वेयणी चेदि चउव्विहाओ कहाओ वण्णेदि तत्थ अक्खेवणी नाम छद्दव्व-णव पयत्थाणं सरूवं दिगंतरसमयांतर-णिराकरणं सुद्धिं करेंती परूवेदि।

विक्खेवणी णाम परसमएण ससमयं दूसंती पच्छा दिगंतरसुद्धिं करंती ससमयं थावंती छद्दव्वा-णवपयत्थे परूवेदि।

संवेयणी णाम पुण्णफलसंकहा। काणि पुण्णफलाणि? तित्थयर-गणहर-रिसि-चक्कवट्टि-बलदेव-सुर-विज्जाहररिद्धीओ।

णिव्वेयणी णाम पावफलसंकहा। काणि पावफलाणि? णिरय-तिरिय-कुमाणुसजोणीसु जाइ-जरा-मरण-वाहि-वेयणा- दालिद्दादीणि। संसारसरीरभोगेसु वेरग्गुप्पाहणी णिव्वेयणीणा........।

पण्हाओ हद-नट्ठ-मुट्ठि-चिंता-लाहालाह-सुह-दुक्ख-जीविय- मरण-जय-पराजय-णाम-दव्वासु-संखं च परूवेदि।

—धवला,पुस्तक १, भाग१, पृ० १०७-८।

८. वागरणगंथाओ पभिति जाव सामित्तं इमं अज्झयणं ताव इमो बीओ पाढो दिस्सति, तंजहा:

— इसिभासियाइं, अध्याय ३१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. नवविहे पावसुयपसंगे पण्णत्ते, तं जहा-
उप्पाए, नेमित्तए, मत्ते, आइक्खए, तिगिच्छीए।
कलावरण-अन्नाणे, मिच्छापावयणत्तिय।। — स्थानाँग, स्थान ९

१०. पत्तेयबुद्धमिसिणो बीसं तित्थे अरिट्ठणेमिस्स।
पासस्स य पण्णरस वीरस्स विलीणमोहस्स।।
— इसिभासियाइं, पढमा संग्रहणी, गाथा, १

११. चोयलीसं अज्झयणा इसिभासिया दियलोगचुया भासिया पण्णत्ता।
— समवायांगसूत्र, ४४/२५८

१२. अंगट्ठाए दसमे अंगे, एगे सुअखंधे, पणयालीसं अज्झयणा।
—नन्दीसूत्र-५४।

१३. (क) पदग्गं बाणउतिंलक्खा सोलस य सहस्सा।
— नन्दीचूर्णि, पृ०७०।
(ख) द्विनवतिलक्षाणि षोडश च सहस्राणि।
— समवायांगवृत्ति

१४. पण्हवायरणो णाम अंग तेणउदिलक्ख—सोलससहस्सपदेहि।
—धवला, भाग १, पृ० १०४

१५. समवायांग, ५४७

१६. समवायांग, ५४७

१७. प्रश्नव्याकरण, जयप्राभृत, (ग्रन्थ० २२८), जैन ग्रन्थावली, पृ०३५५।

(अ) चूडामणिवृत्ति (ग्रन्थ २३००), पाटन केटलोग, भाग १, पृ० ८

(ब) लीलावती टीका, पाटन केटलोग, भाग १, पृ० ८ एवं इन्ट्रोडक्शन, पृ० ६।

(स) प्रदर्शनज्योतिर्वृत्ति, पाटन केटलोग, भाग १, पृ० ८ एवं इन्ट्रोडक्शन, पृ० ६।
बृहद्वृत्तिटिप्पणिका (जैन साहित्य संशोधक, पूना १९;५, क्रमांक ५६०), जैन ग्रन्थावली, पृ० ३५५।
—जिनरत्नकोश, पृ० २७४

१८. जिनरत्नकोश, पृ० २७४।

१९. इसिभासियाइ (शुब्रिंग) अध्याय ३१, पृ० ६९

२०. महमाहप्पुप्पायं, भुवणब्भंतरपवंत (वत्त) वावारं।
अइसयपुण्णं णाणं, पण्हं जयपायडं वोच्छं।।
—प्रश्नव्याकरणाख्यं जयपाहुडनाम निमित्तशास्त्रम् ३।

२१. नष्टमुष्टिचिन्ता-लाभालाभ-सुख-दुःख-जीवित-मरणाभिव्यजंकत्वम्।
-प्रश्नव्याकरणाख्यं जयपाहुडनाम निमित्तशास्त्रम्, टीका।
तुलनीय- पण्हादो हद-नट्ठ-पुट्ठि-चिंता-लाहालाहसुह-दुक्ख-जीविय-मरण-जथ-णाम-दव्वायु-संखं च परूवेदि।
-धवला, भाग १, पृ० १०७-८

२२. प्रश्नव्याकरणाख्यं जयपाहुडनाम निमित्तशास्त्रम्। — प्रकरण १४, १७, २१, ३८।

२३. (अ) अतिशयानां पूर्वाचार्यैरदंयुगीनानामपुष्टालम्बनप्रतिषेविपुरुषापेक्ष-योत्तारितत्वादिति। — प्रश्नव्याकरणवृत्ति (अभयदेव) प्रारम्भ।

(ब) पूर्वाचार्यैरदंयुगीनपुरुषाणां तथाविधहीनहीनतरपाण्डित्यबलबुद्धिवीर्यापेक्षया पुष्टालम्बनमुद्दिश्य प्रश्नादिविधास्थाने पंचाश्रव-संवररूपं समुत्तारितम्।
-प्रश्नव्याकरण टीका (ज्ञानविमल), प्रारम्भ।

२४. (अ) प्रश्नानां विद्याविशेषाणां यानि व्याकरणानि तेषां प्रतिपादनपरा दशा दशाध्ययनप्रतिबद्धाः ग्रन्थपद्धतय इति प्रश्नव्याकरणदशाः। अयं च व्युत्पत्त्यर्थोऽस्य पूर्वकालेभूत्। इदानीं त्वाश्रवपंचकसंवरापंचकव्याकृतेरेवेहोपलभ्यते। — प्रश्नव्याकरण वृत्ति (अभयदेव) प्रारम्भ।
(ब) प्रश्नाः अंगुष्ठादिप्रश्नविद्या व्याक्रियन्ते अभिधीयन्ते अस्मिन्निति प्रश्नव्याकरणम् एतादृशं पूर्वकालेऽभूत। इदानीं तु आश्रव-संवर-पंचकव्याकृतिरेव लभ्यते।
—प्रश्नव्याकरण टीका (ज्ञानविमल) प्रारम्भ।

२५. शकराज्ञो पंचसु वर्षशतेषु व्यतिक्रान्तेषु अष्टनवतेषु नंद्यध्ययनचूर्णी समाप्ता।।
—नन्दीचूर्णि (प्राकृत-टेक्स्ट-सोसायटी)।
पाठान्तर-सकराक्रान्तेषु पंचसु वर्षशतेषु नन्द्यध्ययनचूर्णी समाप्ता।।
— नन्दीचूर्णि (ऋषभदेव केशरीमल, रतलाम)।

२६. तम्हि पण्हावागरणे अंगे पंचासवदाराइं वा व्याख्येयाः परप्पवादिणो य।
—णंदीसुत्तचूण्णि, पृ० ६९।

Jain Education International - For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org